रासो परम्परा के सन्दर्भ में रासो का तात्विक विवेचन

- डॉ. कृष्णबीर सिंह

***निवेदन*-प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य रासो के शाब्दिक अर्थ के सम्बन्ध में पूर्व स्थापित जर्जर मान्यताओं एवं संभवत: अनुमानों को ध्वस्त करके उचित प्रामाणिक एवं सटीक अर्थ स्थापित करना है। हिन्दी साहित्य एवं अन्य विषयों से सम्बन्धित विद्वतजनों के विचारों का अपमान करना अथवा स्वयं को तुलनात्मक दृष्टि से अन्य से श्रेष्ठ सिद्ध करना शोधार्थी का कतई उद्देश्य नहीं है।**

हिन्दी साहित्य के इतिहास के उद्भव, विकास पर दृष्टिपात करते हैं तो अनेकों मतभेद एवं असन्तुलन दिखाई देते हैं। हिन्दी के विभिन्न विद्वानों ने सप्रमाण हिन्दी साहित्य के इतिहास को विभिन्न कालखण्डों में विभाजित करके उन्हें सम्भावित नामों से संज्ञित किया है। मुख्यत: इसमें कालखण्ड एवं नाम पर अधिक आपत्ति एवं सहमति दिखाई देती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र के केन्द्र बिन्दू में आदिकालीन साहित्य है किन्तु जिस ग्रन्थ का प्रमुख रूप से विवेचन होगा उसकी रचना रीतिकाल में आवश्यक हुई है। किन्तु कथानक आदिकालीन है। इससे भी अधिक संवेदनशील विषय है कि ग्रन्थ के नाम के साथ जुड़ा रासो शब्द इस शोधपत्र के चारों ओर लिपटा हुआ है। उचित समय प्रतीत होता है कि हम पुन: चिन्तन, मंथन एवं विवेचन करके यह परिणाम प्राप्त करें कि रासो की पूर्व उल्लेखित विभिन्न परिभाषाएँ क्या सत्य एवं प्रासंगिक हैं? कहीं हम लकीर के फकीर होकर भावुक तो नहीं हो गये कि उससे आगे कुछ चिंतन करके मान्यताओं में अपेक्षित परिवर्तन करने का विचार मस्तिष्क में उत्पन्न ही नहीं होने देते। मनोविज्ञान की भाषा में यह अन्धी श्रद्धा का एक रूप है जो अन्त:करण को भयाक्रान्त बनाकर यथास्थिति बनाने में सहयोग करता है। यही कारण है कि आज प्रत्येक विश्वविद्यालय में हजारों की संख्या में शोध तो पूर्ण हो रहे हैं, पी-एच. डी. उपाधियाँ भी वितरित हो रही हैं किन्तु कितने शोध परिवर्तन करने या नवीन मान्यताओं को स्थापित करने की शक्ति रखते हैं? शोध एक सतत् प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक स्तर पर और विकास होने की प्रबल सम्भावनाएँ होती हैं। यही कारण है कि उन्नति, विकास एवं श्रेष्ठता हेतु शोध प्रक्रिया प्रारम्भ रहती हैं। खैर!

रासो शब्द की उत्पत्ति, विकास एवं रूप-मैं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रासो शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में व्यक्ति विचारों का पूर्णत: खण्डन इसलिए करता हूँ कि शुक्लजी ने बीसलदेव रासो ने वर्णित पंक्ति के आधार पर यह घोषणा कर दी है- कुछ लोग इस शब्द का सम्बन्ध रहस्य से जोड़ते हैं। पर बीसल देव रासों में काव्य के अर्थ में **रसायण** शब्द बार-बार आया है। अत: हमारी समक्ष में इसी रसायण शब्द के होते-होते रासो हो गया है। वे अपने विचारों के समर्थन में वीसलदेव रासो की इस पंक्ति को प्रस्तुत करते हैं- ''**नाल्ह रसायन आरम्भई शारदा तुठी ब्रह्म कुमारि।**'' जिस रहस्य की चर्चा शुक्लजी करते हैं तो इस रहस्य से रासो की विकास यात्रा का उल्लेख करने वाले रामानारायण दुग्गड़, कविराज श्यामलदास एवं काशी प्रसाद जायसवाल हैं जिनका मानना है कि **रासो** शब्द मूलत: संस्कृत के रहस्य से इस प्रकार उत्पन्न हुआ-

रहस्य (संस्कृत)-रहस्सो-रअस्सो-रासो।

चूँकि हिन्दी साहित्य में कुछेक विद्वतजन नींव का पत्थर हैं। उनका प्रत्येक शब्द ब्रह्मवाक्य है। अत: शुक्ल जी द्वारा मान्य रसायन का रासो से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध दिखाई नहीं देता, अपितु रसायन ग्रन्थों की एक स्वतन्त्र शृंखला अवश्य दिखाई देती है। यह न्यायोचित होगा कि हिन्दी के अन्य विद्वानों द्वारा इस सम्बन्ध में व्यक्त विचारों पर भी दृष्टिपात कर लिया जाये ताकि स्थिति पूर्णत: स्पष्ट व पारदर्शी हो जाये। फ्रांस के विद्वान गार्सा-द-तासी का मानना है कि **रासो** शब्द का सम्बन्ध राजसूय यज्ञ से है जिसका आधार वे पृथ्वीराज रासो के नाम से जन-सामान्य द्वारा उच्चरित पृथ्वीराज राजस को उल्लेखित करते हैं।

ग्रियर्सन के अनुसार, 'रासो' शब्द की उत्पत्ति राजा देश से हुई है। इस सम्बन्ध में वे तर्क देते हैं कि मारवाड़ी में रासो को ही रायसो कहते हैं जिनका सम्बन्ध राजा देश से है।

आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय कहते हैं कि मूलत: यह संस्कृत नाट्यशास्त्र का एक अंग है अर्थात् यह संस्कृत-काव्यशास्त्र के अठारह उपखण्डों में से एक हैं जो रासक का एक रूप है। आचार्य पाण्डेय ने अपने विचार के समर्थन में पृथ्वीराज रासो के प्रारम्भ में कवि चंद बरदाई और उसकी पत्नी नट-नटी के समान वार्तालाप करते हैं, को प्रस्तुत किया है।

उदय सिंह भटनागर का सन् 1955 में एक लेख हिन्दी अनुशीलन पत्रिका के अक्टूबर-दिसम्बर अंक में प्रकाशित हुआ था। जिसका विषय था। ''रासो की परम्परा'' श्री भटनागर ने रासो शब्द की उत्पत्ति रास धातु से मानते हुए उसका सामान्य अर्थ गर्जन से लगाया है। श्री भटनागर संकेत करते हुए कहते हैं कि रासो चरित्र प्रधान, रास योग रूपक तत्त्वों से युक्त होकर अपने कथानक को मात्र काव्यमय प्रबन्ध के रूप में लेकर विकसित हुआ है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के रासो सम्बन्धी विचारों पर गहन चिंतन करते हैं तो वे रासो का सम्बन्ध हेमचन्द्र द्वारा रचित 'काव्यानुशासन' में वर्णित 'रासक' से लगाते हैं। हेमचन्द्र रासक को गेय रूप में स्वीकार करते हुए इसके क्रमश: मृसण उद्धत एवं मिश्र तीन प्रकार भी बताते हैं।

डॉ. दशरथ शर्मा एवं नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सम्पादित, प्रकाशित पृथ्वीराज रासो ग्रन्थ (भूमिका) रासो की उत्पत्ति रास से

अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, एस.एस.जी. पारीक (पी.जी) कॉलेज, बनीपार्क, जयपुर (राजस्थान)

मानते हुए कहा है कि संस्कृत में इसका अर्थ ध्वनि, क्रीड़ा, गर्जन और नृत्य होता है।

महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के मतानुसार, 'संस्कृत रास' से रासो की उत्पत्ति हुई। रास का अर्थ विलास भी होता है जो चारित्र, इतिहास आदि के अर्थ में प्रचलित था।

नरोत्तम स्वामी एवं मुंशी देवी प्रसाद रासो का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि रासो के मायने 'कथा' से है। यह रूढ़ शब्द है। एक वचन रासो तथा बहुवचन रासा होता है।

डॉ. सुमन राजे रास शब्द को मूल मानते हुए इसका सम्बन्ध लास्य नामक नृत्य से स्वीकार करते हुए इसे आदि काल से चली आ रही एक लोक परम्परा की नृत्य-गति मूलक शैली मानती हैं जो लास्य का एक अंग थी तथा प्रारम्भ में इसकी अभिव्यक्ति रस छंद में होती थी। भविष्य मे यह गीतात्मक एवं अभिनयात्मक दो रूपों में विकसित और फलित हुई।

डॉ. रामगोपाल शर्मा दिनेश के अनुसार इनका जन्म क्रीड़ा और नृत्य से हुआ। इस सम्बन्ध में वे आगे कहते हैं कि रास को एक प्रभावशाली रचना शैली का रूप देने में जैन साधुओं ने बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है, क्योंकि जैन तीर्थांकरों के जीवन चरित एवं वैष्णव अवतारों की कथाएँ जैन आदर्शों के आवरण में **रास** नाम से पद्यबद्ध की गईं।

डॉ. दयानन्द श्रीवास्तव कहते हैं, 'लघुकाय रास' की मूल प्रेरणा अभिनत्यात्मक थी। ऐसा लगता है कि राम की मूल अनुप्रेरणा नृत्यपरक थी। समय के साथ उसमें छंद की योजना की गई और नृत्य तथा छन्द की सामूहिकता के पश्चात् उसमें कथा-वस्तु का नियोजन किया गया है।'' अनेकों विद्ववतजनों ने संस्कृत एवं जैन साहित्य के प्रभाव का उल्लेख किया हैं। यहाँ पुन: संस्कृत भाषा में रचित हमारे पौराणिक ग्रन्थों में वर्णित रासों सम्बन्धी टिप्पणी को देखने का प्रयास करते हैं-

विष्णु पुराण एवं हरिवंश पुराण में 'रास' शब्द का अर्थ 'नृत्य-गीत' स्वीकार किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि 'रास' शब्द मूलत: गेय रूपक या नृत्य काव्य आदि के लिए प्रयुक्त होता था।

विरहांक ने ग्रंथ 'वृतजाति समुच्चय' में उल्लेख किया हैं-

''अडिलहि दुबहएहिंव घत्ता रड्डहि तह अढोसाहि।
बहुएहि जो रज्जई सो भण्णइ रासउ॥''

अर्थात् जिस रचना में अडिल्ल, दूहा, मात्रा, रड्डा और ढोसा इत्यादि छन्द हों उसे 'रासक' कहते हैं। 'उपदेश रसायन' हो अथवा 'दशरूपकार' रासो को 'रासक' रूप में स्वीकार करके अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है जबकि स्वयंभू ने विरहांक की बात का छंद आधार पर समर्थन करते हुए 'रासक' को स्वीकार किया है, रासो को नहीं। इसी भाँति कतिपय विद्वानों के इस सम्बन्ध में जो विचार उद्घाटित हुए हैं वे भी 'रासक' की ही चर्चा करते हैं- रासो की नहीं। संक्षेप में, उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् यह विचारणीय प्रश्न उत्पन्न होता है कि हिन्दी साहित्य में मुख्यत: 'रास, रासक एवं रासो' सम्बन्धी प्राप्त ग्रन्थों पर दृष्टिपात किया जाये ताकि अनवरत उत्पन्न भ्रम की स्थिति से मुक्ति प्राप्त की जा सके। अत: यहाँ इस प्रयास के साथ संक्षिप्त टिप्पणी प्रस्तुत करने का साहस कर रहा हूँ ताकि इस विषय की प्रत्येक धारा को स्वतन्त्र रूप से व्याख्यायित करके स्पष्ट कर सकूँ। क्रमानुसार बात प्रारम्भ करते हैं-

रास परम्परा-रास परम्परा के अन्तर्गत सर्वप्रथम हमें अपभ्रंश काल में 'मुंजरास' की सूचना प्राप्त होती हैं। मुंजरास के विषय में हमें सम्वत् 1197 वि. में रचित हेमचन्द्र के प्रसिद्ध व्याकरण 'सिद्धहैम' में मात्र दो छन्द उदाहरण स्वरूप प्राप्त होते हैं तथा सं. 1361 वि. में मेरुतुंग द्वारा लिखित ग्रन्थ 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में मुंज की कथा व कुछ पद प्राप्त होते हैं। मुंजरास के कथानक को देखते हैं तो इसमें राजा मुंज और मृणालवती नामक नायिका का प्रेम प्रसंग है जो अत्यन्त दुखान्त स्थिति में समाप्त होता है।

भरतेश्वर बाहुबलि रास-इसका कथानक भगवान ऋषभदेव के दो पुत्रों-बाहुबलि एवं भरतेश्वर के बीच संघर्ष को उद्घाटित करता है। इसमें कुल 203 छंद हैं जो अधिकतर वीर रस के हैं। इस ग्रन्थ के रचनाकार शालिभद्र सूरि हैं। **बुद्धिरास**-इस ग्रन्थ के रचनाकार भी शालिभद्र सूरि ही हैं। इसमें 63 छंद हैं। इसमें जीवन के सदाचार सम्बन्धी उपदेश उल्लेखित हैं। **उपदेश रसायन रास**-इसमें कुमार्गी व सुमार्गी मानव की तुलनात्मकत स्थिति को व्यक्त किया गया है। विशेषत: श्रावकों हेतु रचित ग्रन्थ है। **चन्दन बाल रास**-चन्दनबाला नामक एक सतीत्व और चरित्रवान स्त्री की मार्मिक कथा का उल्लेख है जो अनेक यन्त्रणाओं को झेलकर अन्त में महावीर से दीक्षित होती हैं। करूणा एवं शांत रस का सुन्दर वर्णन है। **नेमिनाथ रास**-इसमें नेमिनाथजी के सम्पूर्ण जीवन का विस्तार पूर्वक वर्णन है। **गय सुकुमाल रास**-गज सुकुमार मुनि के सम्पूर्ण जीवन चरित्र का उल्लेख हैं। **समरा रास**-समरसिंह की तीर्थ यात्रा एवं आदिनाथ की प्रतिमा स्थापना का उल्लेख है। **पचपंडव चरित राम**-कथा महाभारत पर आधारित हैं जिसमें महाभारत के यद्ध में उनकी विजय के पश्चात् उनका नेमिनाथ जी के उपदेशों की पालना करने के पश्चात् जैन धर्म स्वीकार कर मुनि बन जाने तक का वर्णन हैं। संक्षेप में, इसी प्रकार कुमारपाल रास, कच्छूलिरास, रेवंतगिरि रास, समरा रास, पेथड़ रास, आबूरास या नेमिजिणंद रास, जीवदया रास, गौतम स्वामी रास, कलिकाल रास, बीसलदेव रास आदि का भी कथानक जैन सिद्धान्तों के आधार पर है।

रासु परम्परा

सप्त क्षेत्रि रासु-इस ग्रन्थ में जैन धर्म से सम्बन्धित समस्त, नियमों, आचार आदि का सविस्तार वर्णन है।

रासा, रायसौ, रायसा परम्परा

पारीछात रायसा-इसके रचनाकार श्रीधर हैं जिसमें दतिया के राजा पारीछत का जीवन चरित्र वर्णित है। **रायसा**-शिवनाथ द्वारा रचित इस ग्रन्थ में रीवा के अजीत सिंह एवं धारा के जसवन्त सिंह के मध्य हुए युद्ध का वर्णन है। **रासा भइया बहादुरसिंह का**-इसका कथानक युद्ध पर आधारित है। इसके रचनाकार शिवनाथ हैं। **करहिया कौ रायसौ**-करहिया के परमारों एवं भरतपुर के जवाहर सिंह के मध्य घटित युद्ध का वर्णन है। **रासा भगवंत सिंह का**-इसमें भगवन्त सिंह खींची के जीवन चरित्र एवं युद्ध का वर्णन है।

रासो परम्परा

मूल विषय के अलावा अभी तक परोक्ष एवं अस्पष्ट विवाद का विषय अवश्य प्रतीत होता है क्योंकि विभिन्न परम्पराएँ गड्ड-मड्ड हो गई है जिसके कारण मात्र 'रासो' ही सर्वोपरि प्रस्तुत होने लगा है। मुख्य रासो ग्रन्थों के कथानक पर भी संक्षिप्त रूप से विचार किया जाना अपेक्षित है। सबसे पहले मुंज रासो आता है। उल्लिखित किया जा चुका है कि इसकी सूचना के रूप में कुछ स्फूट पद अन्य दो ग्रन्थों में मिलते हैं जिनमें मुंज रासो की छाप है जिसके आधार पर 'मुंजरासो' के एक स्वतन्त्र ग्रन्थ होने की घोषणा एवं आशा का संचार अभी तक शेष है। **पृथ्वीराज रासउ**-सबसे बड़ी उपलब्धि तो यह मानता हूँ कि 'रासउ' को 'रासो' कर दिया। ठीक इसी भाँति अभी तक इस गन्थ की मूल स्थिति का पता नहीं लगा पाया है क्योंकि यह विभिन्न आकारों में प्राप्त होता है। दस हजार रूपकों से लेकर 300 एवं इससे भी कम रूपकों वाले संस्करण उपलब्ध है। पृथ्वीराज, संयोगिता, शहाबुद्दीन, जयचन्द, गोरी, आदि के युद्ध एवं प्रेम के बीच चन्द की स्वामीभक्ति, काव्य कौशल एवं कर्त्तव्य परायणता का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ हैं।

रसायन परम्परा

अपभ्रंश काल में इस परम्परा का ग्रन्थ 'उपदेश रसायन रास' मिलता है जिसके रचयिता जिनदत्त सूरि है। यह ग्रन्थ पठन-पाठन दृष्टि से ही लिखा गया था, गायन अथवा नृत्य आदि हेतु इसके पदों की रचना नहीं हुई थी। शांत रस की कुल 80 चतुष्पदियों वाले इस ग्रन्थ में जैन धर्म का प्रतिपादन हुआ है।

रासक परम्परा

रासक परम्परा का प्रारम्भ भी अपभ्रंशकाल से ही होता है। इसमें हमें 'सन्देश रासक' ग्रन्थ, जिसका रचनाकाल सम्वत् 1207 के आस-पास है, प्राप्त होता है। इसमें कुल 223 छंद हैं जो बाइस प्रकार के हैं। ग्रन्थ प्राय: पठन-पाठन हेतु लिखा गया है, गायक हेतु इसकी रचना के प्रमाण प्राप्त नहीं होते। सन्देश शासक की कथा सुखान्त है जिसमें स्वकीया प्रेम का विकास होता है तथा इसमें प्रवाह जनित विरह भी है। मूलत: इसकी कथा विजयनगर-राजस्थान की एक विरहिणी की है जो एक पथिक वे माध्यम से अपने पति के लिए सन्देश प्रेषित करती हैं किन्तु विरहिणी के सन्देश में पथिक उलझकर रह जाता है। अन्त में जब वह प्रस्थान करने की कौशिश करता है तो विरहिणी के आँखों से अश्रुधारा फूट पड़ती है। नायिका समस्त ऋतुओं और महिनों का मार्मिक वर्णन करके अपने विरह की स्थिति का परिचय पथिक के समक्ष प्रस्तुत करती है। अन्त में नायक-नायिका का मिलन होता है। रासो परम्परा में मुख्य रूप से **परमाल रासो** (पृथ्वीराज एवं परमाल के मध्य महोबा के निकट हुए युद्ध का वर्णन), **राणा रासो** (अमरसिंह नामक राजा के युद्ध वर्णन के अलावा सिसोदिया वंश का वर्णन), **सगत सिंह रासो** (शक्ति सिंह व उनके वंशजों का जीवन चरित), **रतन रासो** (रतलाम के राजा रतन सिंह का जीवन चरित) **राम रासो** (राम चरित्र का वर्णन), **खुमाण रासो** (खुमाण वंश की वीरता-शैर्यता का वर्णन) आदि ग्रन्थ हैं। इन रासो ग्रन्थों के अलावा भी अनेकों ग्रन्थ उपलब्ध हैं जो विभिन्न सरकारी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठानों, अर्द्ध सरकारी क्षेत्र अथवा निजी पुस्तकालयों में पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। रासो पम्परा में हमें '**हम्मीर रासो**' ग्रन्थ की सूचना एवं ग्रन्थ भी प्राप्त होते हैं। ग्रन्थ की सूचना एवं उसके आठ छंद सन् 1902 में बंगाल एशियाटिक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित एवं चन्द्रमोहन घोष द्वारा सम्पादित '**प्राकृत पैंगलम**' में उपलब्ध है किन्तु न तो पदों की रचना सम्बन्धी यह सूचना उपलब्ध है कि इनका रचनाकाल क्या है एवं न ही इन्हें विश्वसनीय ही कहा जा सकता है। कारण, पदों में हम्मीर सम्बन्धी जो भी सूचना उल्लेखित की गई है उसके आधार पर हम्मीर के जीवन में घटित घटनाएँ मेल नहीं खाती। समयकाल के आधार पर भी एक अन्तराल दिखाई देता है। 'प्राकृत पैंगलम्' में पद संख्या-71, 92, 106, 147, 151, ,183, 190, 204, आदि पद हम्मीर से सम्बन्धित बताये गये हैं। संभवत: यह कोई एक या एक से अधिक कोई हम्मीर होगा अथवा मिथ हम्मीर भी हो सकता है। इसी भाँति नयचन्द्र सूरि द्वारा रचित ग्रन्थ '**हम्मीर महाकाव्य**' जिसका प्रकाशन सन् 1879 में पंडित नीलकण्ठ जनार्दन के सम्पादन में हुआ था। यह ग्रन्थ मूलत: संस्कृत में है जो सम्भवत: हम्मीर के स्वर्गारोहण के लगभग सौ वर्ष वाद की ज्ञात होती है। किन्तु पूर्व से अधिक महत्त्व अवश्य रखती है। इसी क्रम में ग्वालकवि द्वारा रचित '**हम्मीर हठ**' एवं चन्द्रशेखर वाजपेयी द्वारा रचित ग्रन्थ '**हम्मीर हठ**' भी प्राप्त होते हैं। विद्यापति द्वारा रचित ग्रन्थ '**पुरुष परीक्षा**' में भी हम्मीर के व्यक्तित्व का उल्लेख प्राप्त होता है। पुरानी राजस्थानी में रचित कवित मंछ के ग्रन्थ '**हम्मीर का कवित्त**' भी प्राप्त होता है। इसी क्रम में कवि महेश द्वारा रचित ग्रन्थ '**हम्मीर रासो**', पुरानी पश्चिमी राजस्थानी में रचित कवि भाण का ग्रन्थ '**हमीर दे चउपई**' आदि की भी सूचना प्राप्त होती है।

कवि जोधराज द्वारा '**हम्मीर रासो**' इस कड़ी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके अनेकों कारण हैं जिनमें साहित्यिक, ऐतिहासिक प्रमाणिकता के अलावा विशिष्ट बात यह है कि हम्मीर चौहान वंशीय राजा था। कवि जोधराज ने उक्त ग्रन्थ नीमराणा महाराजा के प्रीत्यर्थ लिखा। नीमराणा गद्दी चौहान वशं की वरिष्ठ गद्दी है अत: ऐसे में वंश परम्परा का निर्वाह कवि द्वारा पूरी सावधानी से किया जाना अनिवार्य था। यह राजा 'राठ पातिसाह' चन्द्रभान जी थे। ग्रन्थ में 969 छंद है। ग्रन्थ का प्रारम्भ मंगलाचरण से करते हुए गणेश स्तुति की गई हैं। राजर्णन, राजवंश परिचय, कविवशं परिचय के पश्चात् चौहानों की उत्त्पति से पूर्व ब्रह्मा जी द्वारा सृष्टि संरचन का उल्लेख किया है। बारहवी सदी में जैतराव नामक राजा के कृतित्व का विशद वर्णन करते हुए कवि ने बताया है कि सम्वत् 1110 में उसने रणथम्भौर दुर्ग के निर्माण की नींव रखी। पदमऋषि, इन्द्र, कामदेव एव अप्सराओं आदि का भी रोचक वर्णन है। तपस्या भंग हो जाने की ग्लानि में ऋषि अपने शरीर के पाँच टुकड़ें करता है और उन्हें होम कुण्ड को अर्पित कर देता है। मस्तक से 'अल्ला उद्दीन बादशाह' वक्ष स्थल से 'हम्मीर' भुजाओं से 'महिमा शाह एवं गभरू' चरणों से ग्रन्थ की नायिका 'उर्वसी' अर्थात् अलाउद्दीन की रानी रूप विचित्रा का जन्म हुआ। यद्यपि यह पक्ष काल्पनिक प्रतीत होता है। ग्रन्थ में हम्मीर का जन्म सम्वत् 1141, शाका 1006, दक्षिणायन शरद् ऋतु कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी, बार-रविवार का उत्तर भाद्रपक्ष नक्षत्र एवं स्थान रणथम्भौर गढ़ बताया गया है। इसी भाँति गजनी में शाहबुद्दीन के यहाँ अल्लाउद्दीन,

मीणा के घर महिमा मंगोल, गमरू, नायिका के जन्म का भी उल्लेख है। ग्रन्थ में हम्मीर जन्म सम्बन्धी विवरण मंगलाचरण आदि पदों को सम्मिलित करते हुए 187 पदों में वर्णित है। कथानक का प्रारम्भ अलाउद्दीन का अपनी रानी के साथ महिमाशाह से मिलना और रतिदान माँगना। राजा को इस प्रकरण का पता लगाना और दण्ड स्वरूप निष्काषित कर देना। महिमा और गभरू का हम्मीर की शरण में जाना और आश्रय माँगना, हम्मीर द्वारा आसरा दिया जाना तथा शरणागत की अन्तिम समय तक रक्षा करना-यही इस ग्रन्थ का कथानक है। परिणाम स्वरूप भयंकर युद्ध की परिणति होती है। किन्तु हम्मीर शरणागत की रक्षा अन्तिम समय तक करता है। **हम्मीर के सम्पूर्ण व्यक्ति एवं कृतित्व का शोधात्मक दृष्टि से विवेचन करते हैं तो हमें मनोविज्ञान के नियमों को भी ध्यान में रखते हुए जब सामाजिक दायित्वों के निर्वहन पर विचार करते हैं तो गर्व के साथ कहाँ जा सकता है कि हम्मीर हठी नहीं था अपितु वह तो सत्य का संवाहक और भारतीय संस्कृति का पोषक था जिसने शरणागत की रक्षार्थ अपने प्राणों का उत्सर्ग तक कर दिया। ग्रन्थ का समापन सवम्वत् 1885, चैत्र सुदी, तृतीय, वृहस्पतिवार को हुआ। चूँकि शोध पत्र का विषय मूलत: 'रासो' परम्परा है अत: अधिक जानकारी हेतु आप शोध पत्र लेखक द्वारा लिखित एवं सम्पादित प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रकाशित पुस्तक पढ़ सकते हैं।**

॥ खण्डन ॥

1. गार्सा-द-तासी की मान्यता को इसलिए स्वीकार नहीं किया जा सकता कि पूर्णत: कपोल कल्पित प्रतीत होता है। राजसूय यज्ञ के प्रारूप को जब विभिन्न रासों ग्रन्थों में देखते हैं तो इस प्रकार का उल्लेख मात्र एक-दो रासो ग्रन्थों में ही प्राप्त होता है। 2. ग्रियर्सन ने रासो के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं उसके आधार पर जब जैने रास काव्यों का अनुशीलन करते हैं तो वास्तविकता के दूर-दूर तक दर्शन नहीं होते। प्रतीत होता है किसी क्षेत्रिय व्यक्ति ने ग्रियर्सन को स्वयं के विचारों से प्रभावित कर ऐसा अर्थ समझा दिया। 3. डॉ. चन्द्रबली पाण्डेय ने मात्र पृथ्वीराज रासो ग्रन्थ के आधार पर सम्पूर्ण 'रासो' शब्द की परिभाषा और स्थिति का निर्धारण करके भ्रम की स्थिति उत्पन्न कर दी जिसमें वे स्वयं भी भ्रमित हुए दिखाई पड़ते हैं। मात्र पृथ्वीराज रासो के तुल्य ही सभी रासो ग्रन्थों का कथानक समान नहीं है।4. उदयसिंह भटनागर का मत डॉ. चन्द्रबली पाण्डेय के मत से सहमति रखता है। अत: श्री भटनागर कोई नवीन जानकारी प्रेषित नहीं कर पाये हैं।5. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी रासो को 'रासक' से जोड़ते हुए गेय रूपक श्रेणी में सम्मिलित कर दिया। किन्तु पुन: यह कहना अनिवार्य प्रतीत होता है कि हिन्दी साहित्य में ऐसे ग्रन्थों की एक लम्बी परम्परा दिखाई देती है जो नाम से समानता के आधार पर दिखाई तो देते हैं किन्तु उनमें व्यापक भेद-प्रमेद भी हैं जिनको देखने की आवश्यकता है। दूसरा, श्री द्विवेदी रासो का मूल रूप 'रासक' मानते हुए पुन: उसे एक छन्द भी स्वीकार करते हैं और काव्य रूप भी। वे कहते हैं कि जो काव्य रासक छंद से लिखे जाते थे आगे चलकर हिन्दी में वे ही 'रासो' कहलाये। वास्तव में डॉ. द्विवेदी स्वयं ही अपने मत से आगे-पीछे हटते हुए दिखाई देते हैं। 6. श्री ओझा जी ने इतिहास व चरित्र के विशाल क्षेत्र में रासो की स्थिति एवं स्वरूप को स्थापित करके विषय परिवर्तन की चेष्टा की है। 7. नरोत्तम स्वामी एवं मुंशी देवी प्रसाद ने भाषा शास्त्र के आधार पर रासो शब्द को विवेचित करने का प्रयास किया है। वे जब रासो का सम्बन्ध 'कथा' से जोड़ते हैं तो रासो का सम्पूर्ण व्यक्तित्व, स्वरूप ही बदल जाता है। चूँकि रासो का कथानक 'कथा' नहीं है एवं न ही रासो के पात्र कथापात्रों की भाँति व्यवहार करते हैं। ये दोनों विद्वतजन 'रासो' शब्द की उत्पत्ति 'रसिक' शब्द से मानते हुए कहते हैं कि इसका विकास-'रसिक-रासउ-रासो' इस प्रकार हुआ है। किन्तु समस्त रासों ग्रन्थों पर यह टिप्पणी उचित सिद्ध नहीं होती है। 8. डॉ. सुमन राजे के कथन में किसी भी प्रकार की मौलिकता अथवा नवीनता इसलिए नहीं दिखाई देती क्योंकि उन्होंने डॉ. गुप्ता, डॉ. पाण्डेय एवं डॉ.द्विवेदी के विचारों को ही अपने शब्दों में व्यक्त किया है। 9. डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' रासो के समस्त स्वरूप में मात्र अपभ्रंश कालीन एवं जैन कालीन रासो परम्परा को देखते हैं जबकि हम आगे देखेंगे कि वास्तव में रासों सम्बन्धी ग्रन्थों की यह परम्परा कितने खण्डों-उपखण्डों में स्वतन्त्र रूप से विकसित हुई और आगे बढ़ी। 10. डॉ. दयानन्द श्रीवास्तव का कथन एक रंगीन स्वप्न की भाँति प्रतीत होता है। नृत्य हेतु छंद की अनिवार्यता होती है। यह छंद शाब्दिक अथवा ध्वनिगत हो सकता है जिसमें प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से एक कथानक स्वत: ही निर्मित या समाहित होता है। नृत्य का भाव तभी उत्पन्न होता है जब एक छंदीय नाद की ध्वनि सुनाई देने लगती है। पेचिदगी पूर्ण ऐसे कथनों का आशय पूर्णत: अस्पष्ट होता है जिसके कारण कथनकार अपनी बात को मनोवांछित दिशा में मोड़ दिया करते हैं। 11. विष्णु पुराण एवं हरिवंशपुराण में इसे नृत्य विघा से सम्बन्धित काव्य परम्परा की श्रेणी में सम्मिलित किया है। संभवत: 'रास' इसी श्रेणी में आ सकता है किन्तु 'रासो' की ऐसी प्रकृति दिखाई नहीं देती। 12. विरहांक ने काव्य शास्त्र के आधार पर इसे परिभाषित करने का जो प्रयास किया है निस्सन्देह वह 'रासो' के काफी निकट पहुँच कर भी दूर है। कारण, वह 'रासो' की मूल प्रवृति को स्पष्ट नहीं कर पाया है। विरहांक अपनी जगह सही इसलिए हैं कि वह 'रासक' की चर्चा करता है- 'रासो' की नहीं। कुछ इसी भांति **उपदेश रसायन** ग्रन्थ में 'शासक' को गेय काव्य स्वीकार किया गया है जबकि संस्कृत के दशरूपकार ने 'रासक' को 'भागवत' स्वीकार किया है।

स्वयंभू ने छंद एवं अन्य काव्य विशेषताओं के आधार पर कहा हैं कि जिस ग्रन्थ में छत्ता, छप्पय, पद्छड़ी एवं अन्य रूपकों के कारण जन-मन को मनोरंजक करने की शक्ति या विशेषता हो तो यह 'रासक' है। कुछे एक अन्य विद्वान भी रासो का सम्बन्ध 'रास' या 'रासक' से जोड़ते हुए इसका अर्थ 'विलास, शृंखला, नृत्य, गर्जन, ध्वनि, क्रीड़ा' आदि बताते हैं।

विवेचन एवं विश्लेषण

रसायन परम्परा में हमें 'उपदेश रसायन रास' प्राप्त होता है। पदों के कथानक के आधार पर इसे रासो ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता क्योंकि मूलत: यह जैन धर्म से सम्बन्धित ग्रन्थ है। अत: **आचार्य शुक्ल का रासो सम्बन्धी विचार यहाँ स्वत: खारिज जो जाता है। 'रासो' सम्बन्धी जितने भी ग्रन्थ प्राप्त है उनका कथानक उपदेशात्मक**

अधिक है जो मानव जीवन में सुख शान्ति, समृद्धि एवं उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करता है। इन ग्रन्थों में युद्ध या लड़ाई सम्बन्धी कोई घटना का उल्लेख नहीं है। सम्भवत: यह जीवन में रस, आनन्द एवं प्रशन्नता के संचार हेतु व्यक्त निर्देशों, आदेशों की पोथियाँ हैं जो अवगुणों के स्थान पर सद्‌गुणों एवं सद्‌चरित्र की बात पर बल देते हैं। ऐसे चरित्र निर्माण ग्रन्थों को 'रासो' ग्रन्थ कहना न्यायोचित प्रतीत नहीं होता।

इसी भाँति 'रासु' परम्परा का 'सप्तक्षेत्रि रासु' ग्रन्थ जिसका कथानक भी जैन धर्म से सम्बन्धित है। यहाँ इस बात की सम्भावना प्रतीत होती है कि यह मूलत: रास परम्परा का ग्रन्थ है, लिपिकार अथवा किसी अन्य अशुद्धि के कारण 'रासु' लिख दिया गया है। विषय के आधार पर 'रासो' परम्परा में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। रासा, रायसो, रायसा एवं रासो नामों से रचित ग्रन्थों को ही 'रासो' परम्परा के ग्रन्थ कहा जाये तो उचित होगा। 'रासो' के लिए जो विषय, कथावस्तु एवं घटना आदि का विद्वतजनों द्वारा निर्धारण किया गया है उसके अनुरूप इस समस्त छाप वाले ग्रन्थों का कथानक मिलता है। इस दृष्टि से इस परम्परा में अन्य छाप वाले ग्रन्थों को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए।

शब्द 'रासो' का निर्माण 'रास' से न बनकर 'रासा' से बना है। रास में रस सम्बन्धी गुणों के समाहित होने के परोक्ष संकेत दिखते हैं जबकि 'रासा' युद्ध लड़ाई-झगड़े का प्रतिनिधित्व करता है। मुख्यत: 'द्वन्द्व' के मूल अर्थ में 'रासो' देखा जाना चाहिए। इस द्वन्द्व के केन्द्र में स्त्री अवश्य रही है जिसके प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कारण युद्ध हुए। इन युद्धों में छल-कपट के स्थान पर सत्यता, प्रेम-समर्पण, त्याग, वफादारी, धर्म एवं कर्त्तव्य परायणता के अभिन्न उदारहण प्राप्त होते हैं। चूँकि यह ग्रन्थ अधिकतर राजस्थान एवं आसपास के क्षेत्रों में ही लिखे गये हैं अत: द्वन्द्व के सन्दर्भ में यह 'रासो' जाने जाये तो प्रासंगिक होगा। अन्य छाप वाले ग्रन्थों को सर्वथा इनसे पृथक श्रेणी में रख कर देखा जाये और उन्हें 'रासो' ग्रन्थ कहकर सम्बोधित न किया जाये। कारण, स्थिति स्वयं में अत्यन्त स्पष्ट है। कतिपय विद्वानों के कारण शयद यह भ्रम की स्थिति बन गई है जिसे शोधार्थियों एवं अन्य विद्वानों द्वारा समझने एवं संशोधित करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. हम्मीर रासो-डॉ. कृष्णवीर सिंह
2. लिटरेसी हेरिटेज ऑफ रूलर ऑफ आमेर एण्ड जयपुर-गोपाल नारायण बहुरा
3. राजस्थान भारती, भाग 1 अंक- 1,2,3 नरोत्तम स्वामी
4. हिन्दी खोज विवरण-नागरी प्रचारिणी सभा-काशी, सूचना-262. (1909)
5. हिन्दी खोज विवरण-नागरी प्रचारिणी सभा-काशी, 1901,
6. राजस्थानी भाषा और साहित्य-मोतीलाल मेनारिया पृ. 158
7. राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज-प्रथम भाग, मोतीलाल मेनारिया, पृ.-76
8. 'रास और रासान्वयी काव्य' डॉ. दशरथ ओझा, दशरथ शर्मा, पृ. 360
9. भारतीय विद्या, भाग-2, अंक-3, पृ.-313-324
10. राजस्थान का पिंगल साहित्य-मोतीलाल मेनारिया, पृ. 38
11. रेवंतगिरिदास-सम्पाद.सी.सी. दलाल, प्राचीन गुर्जर काव्य भाग 1 में प्रकाशित (प्रकाश-गायकवाड़ ऑरियन्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा)
12. भरतेश्वर बाहुबली रास- सम्पादक-लालचन्द भगवान-प्राच्य विद्या मन्दिर बड़ौदा
13. चंदनबाला रास- अमरचन्द नाहटा (सम्पादक)
14. गय सुकुमार रास- सम्पादक-अमरचन्द नाहटा
15. कच्छूली रास- गुर्जर काव्य संग्रह, भाग-1
16. समरा रास गुर्जर काव्य संग्रह, भाग-1
17. बीसलदेव रास- डॉ. माता प्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद् प्रयाग वि. वि.
18. 'रास और रासान्वयी काव्य'- में प्रकाशित ग्रन्थ-गौतम स्वामी रास पंच पांडव रास, नेमिनाथ रास, नेमिजिर्णद रास, बुद्धिरास, संदेश रासक,
19. पृथ्वीराज रासउ-सं. श्यामसुन्दर दास, मो. विष्णुलाल पांड्या, नागरी प्रचारिणी सभा-काशी।
20. कायम रासो- न्यामत खाँ, राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर, जयपुर
21. मांकण रासो-कीर्ति सुन्दर-राजस्थान भारती, भाग-3, अंक-3-4, पृष्ठ-100
22. पारीछत रायसा-सम्पादक-हरिमोहन श्रीवास्तव-भारतीय साहित्य, अंक 2, पृष्ठ
23. वीर काव्य-डॉ. उदयनारायण तिवारी, लीडर प्रेस, इलाहबाद.
24. राउजैतसी रासो-सम्पादक-नरोत्तम स्वामी (राजस्थान भारतीय भाग-2, अंक-2 पृष्ठ 70)
25. माता प्रसाद गुप्त-रासो सम्बन्धी विभिन्न लेख।